Notification no- 508/2022
Date of award-28-2-2022
शोधार्थी
गोविन्द यादव

शोध-निर्देशक
प्रो. हेमलता महिश्वर

हिंदी विभाग
मानविकी एवं भाषासंकाय

दलितों में प्रचलित लोकगाथाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन
(बिहारी बोलियों के विशेष संदर्भ में)

पाँच बीज शब्द: लोकगाथा, बिहारी बोलियाँ, चेतना, जाति, समाज ।

दलित लोकगाथाएँ केवल लोकसाहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा भर नहीं हैं बल्कि वह जातीय संघर्ष और परिवर्तन का जीवंत दस्तावेज़ हैं। इनमें दलितों की निम्न सामाजिक स्थिति और सामाजिक अंत:क्रियाओं के पर्याप्त साक्ष्य हैं। लोकगाथाएँ हमारे सामाजिक इतिहास की अपरोक्ष महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। दलित लोकगाथाओं के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि अनेक सामाजिक-आर्थिक कुरीतियों, जैसे- बेगार प्रथा, पट्टेदारी प्रथा और डोला प्रथा के मूल में तत्कालीन समाज के रीतिरिवाज़ और अनेक रूढ़ियाँ थीं। बिना इनके अध्ययन के समाज विशेष के इतिहास को समग्रता में नहीं समझा जा सकता है। दलित लोकगाथाओं के अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थान विशेष में सामंतवाद की प्रकृति और विशेषता भी अलग होती

है जो अपने सामाजिक, प्राकृतिक और परिवेशगत संरचनाओं से संचालित होती है। तत्कालीन दलित समाज ने लोकगाथाओं को मनोरंजन मात्र न मानकर उन्हें जनसंचार का माध्यम बनाया और समाज में चेतना और जागृति लाने का कार्य किया। दलितों ने लोकगाथाओं को सामाजिक अनुशासन का नियामक बनाया । अनेक लोकगाथाओं को दलितों ने वाचिक परम्पराओं में सुरक्षित रखा है। लोकगाथाओं के अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दलितों के पूर्वज उच्च जातियों, सामंतों, जमींदार खलनायकों से संघर्ष करते हैं और उन पर विजय प्राप्त करते हैं। दलित जातियों के नायकों ने सामंतवाद, ब्राह्मणवाद का अंत कर समाज को उनके अत्याचारों से मुक्त किया है। लोकगाथाओं ने विभिन्न बिहारी बोलियों, संस्कृतियों और सामाजिक अनुबंधों में समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। दलित लोकगाथाओं में दलितों ने पारंपरिक सवर्णवादी देवताओं की अवधारणा को अस्वीकार करते हुए उनके समानांतर अपने जन-नायकों को गढ़ा और उन्हें देवत्व की गरिमा प्रदान की।